शासन-प्रभाविका अमर साधिकाएँ

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

भगवान महावीर ने केवलज्ञान होने के पश्चात् चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की। साधुओं में गणधर गौतम प्रमुख थे तो साध्वियों में चन्दनबाला मुख्य थीं। किन्तु उनके पश्चात् कौन प्रमुख साध्वियाँ हुईं, इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है। यों आर्या चन्दनबाला के पश्चात् आर्या सुव्रता, आर्या धर्मी, आर्य जम्बू की पद्मावती, कमलभाल विजयश्री, जयश्री, कमलावती सुसेणा, वीरमती, अजयसेना इन आठ सासुओं के प्रव्रज्या ग्रहण करने का उल्लेख है और जम्बू की समुद्रश्री, पद्मश्री, पद्मसेना, कनकसेना, नभसेना, कनकश्री, रूपश्री, जयश्री इन आठ पत्नियों के भी आर्हती दीक्षा लेने का वर्णन है। वीर निर्वाण सं० २० में अवन्ती के राजा पालक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अवन्तीवर्धन को राज्य तथा लघु पुत्र राष्ट्रवर्धन को युवराज पद पर आसीन कर स्वयं ने आर्य सुधर्मा के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। राष्ट्रवर्धन की पत्नी का नाम धारिणी था। धारिणी के दिव्य रूप पर अवन्तीवर्धन मुग्ध हो गया। अतः धारिणी अर्धरात्रि में ही पुत्र और पति को छोड़कर अपने शील की रक्षा हेतु महल का परित्याग कर चल दी। और कौशांबी की यानशाला में ठहरी हुई साध्वियों के पास पहुँची। उसे संसार से विरक्ति हो चुकी थी। वह सगर्भा थी। किन्तु उसने यह रहस्य साध्वियों को न बताकर साध्वी बनी। कुछ समय के पश्चात् गर्भसूचक स्पष्ट चिह्नों को देखकर साध्वी प्रमुखा ने पूछा तब उसने सही स्थिति बतायी। गर्भकाल पूर्ण होने के पर पुत्र को जन्म दिया और रात्रि के गहन अंधकार में नवजात शिशु को उसके पिता के अभूषणों के साथ कोशांबी नरेश के राजप्रासाद में रख दिया। राजा ने उस शिशु को ले लिया और उसका नाम मणिप्रभ रखा, और पुनः धारिणी प्रायश्चित्त ले आत्मशुद्धि के पथ पर बढ़ गयी। अवन्तीवर्धन को भी जब धारिणी न मिली तो अपने भाई की हत्या से उसे भी विरक्ति हुई। और धारिणी के पुत्र अवन्तीसेन को राज्य दे उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। जब मणिप्रभ और अवन्तीसेन ये दोनों भाई युद्ध के मैदान में पहुँचे तब साध्वी धारिणी ने दोनों भाइयों को सत्य-तथ्य बनाकर युद्ध का निवारण किया।

वीरनिर्वाण की दूसरी-तीसरी सदी में महामन्त्री शकडाल की पुत्रियाँ और आर्य स्थूलभद्र की बहनें यक्षा, यक्षदिन्ना, भूता, भूतदिन्ना, सेणा, वेणा, रेणा इन सातों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की थी। वे अत्यन्त प्रतिभा सम्पन्न थीं। क्रमशः एक बार, दो बार यावत् सात बार सुनकर वे कठिन से कठिन विषय को भी याद कर लेती थी। उन्होंने अन्तिम नन्द की राजसभा में अपनी अद्भुत स्मरण शक्ति के चमत्कार से वररुचि जैसे मूर्धन्य विज्ञ के अहं को नष्ट किया था। सातों बहिनों के तथा भाई स्थूलभद्र के प्रव्रजित होने के पश्चात् उनके लघु भ्राता श्रीयक ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की जो अत्यन्त सुकोमल प्रकृति के थे। भूख और प्यास को सहन करने में अक्षम थे। साध्वी यक्षा की प्रबल प्रेरणा से श्रीयक ने उपवास किया। और उसका रात्री में प्राणान्त हो गया जिससे यक्षा ने मुनि की मृत्यु का कारण अपने आपको माना। दुःख, पश्चात्ताप और आत्मग्लानि से अपने आपको दुःखी अनुभव करने लगी। कई दिनों तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया। संघ के अत्यधिक आग्रह पर उसने कहा कि केवलज्ञानी मुझे कह दें कि मैं निर्दोष हूँ तो अन्न-जल ग्रहण करूँगी, अन्यथा नहीं। संघ ने शासनाधिष्ठात्री देवी की आराधना की। देवी की सहायता से आर्या यक्षा महाविदेह क्षेत्र में भगवान श्री सीमन्धरस्वामी की सेवा में पहुँची। भगवान ने उसे निर्दोष बताया और चार अध्ययन प्रदान किये। देवी की सहायता से वह पुनः लौट आयीं। उन्होंने चारों अध्ययन संघ के समक्ष प्रस्तुत किये जो आज चूलिकाओं के रूप में विद्यमान हैं। इन सभी साध्वियों का साध्वी संघ में विशिष्ट स्थान था पर ये प्रवर्तिनी आदि पर रहीं या नहीं इस सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके पश्चात् कौन साध्वियाँ उनके पट्ट पर आसीन हुईं यह जानकारी प्राप्त नहीं होती है। वाचनाचार्य आर्य बलिस्सह के समय हिमवन्त स्थविरावली के अनुसार विदुषी आर्या पोइणी तथा अन्य तीनसौ साध्वियाँ विद्यमान थीं। कलिंग चक्रवर्ती महामेघवाहन खारवेल द्वारा वीर निर्वाण चतुर्थ शताब्दी के प्रथम चरण में कुमारगिरि पर आगम परिषद हुई थी, जिसमें वाचनाचार्य आर्य बलिस्सह और गणाचार्य सुस्थित सुप्रतिबद्ध की परम्पराओं के पाँच सौ श्रमण उपस्थित हुए थे। वहाँ आर्या पोइणी भी तीनसौ श्रमणियों के साथ उपस्थित हुई थीं। इससे स्पष्ट है कि आर्या पोइणी महान प्रतिभाशाली और आगम रहस्य को जानने वाली थीं। उनके कुल, वय, दीक्षा, शिक्षा, साधना सम्बन्धी अन्य परिचय प्राप्त नहीं है। हिमवन्त स्थविरावली से स्पष्ट है कि पोइणी का चतुर्विध संघ में गौरवपूर्ण स्थान था।

वीरनिर्वाण की पाँचवीं शती में द्वितीय कालकाचार्य की भगिनी सरस्वती थी। उनके पिता का नाम वैरसिंह और माता का नाम सुरसुन्दरी था। राजकुमार कालक का अपनी बहन सरस्वती पर अपार स्नेह था। गुणाकर मुनि के उपदेश से दोनों ने जैन दीक्षा ग्रहण की। एक बार आर्य कालक के दर्शन हेतु साध्वी सरस्वती उज्जयिनी पहुँची। राजा गर्दभिल्ल ने उसके अनुपम लावण्य को देखा तो वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने अपने राजपुरुषों द्वारा साध्वी सरस्वती का अपहरण करवाया। आर्य कलक को गर्दभिल्ल के घोर अनाचार का पता लगा। राजा को समझाने का प्रयास किया, किन्तु राजा न समझा। अतः आर्य कालक ने शकों की सहायता प्राप्त की एवं अपने भानजे भड़ौच के राजा भानुमित्र को लेकर युद्ध किया, साध्वी सरस्वती को मुक्त करवाया और पुनः अपनी बहन सरस्वती को दीक्षा प्रदान की। साध्वी सरस्वती अनेक कष्टों का सामना करके भी अपने पथ से च्युत नहीं हुई।

वीर निर्वाण की पाँचवीं शती में आर्य वज्र की माता सुनन्दा ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी। उन्होंने किस श्रमणी के पास श्रमणधर्म स्वीकार किया इसके नाम का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। यह सत्य है कि उस युग में साध्वियों का विराट समुदाय होगा, क्योंकि बालक वज्र ने साध्वियों से ही सुनकर एकादश अंगों का अध्ययन किया था।

वीरनिर्वाण की छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में साध्वी रुक्मिणी का वर्णन मिलता है। वह पाटलीपुत्र के कोट्याधीश श्रेष्ठी धन की एकलौती पुत्री थी। आर्य वज्र के अनुपम रूप को निहार कर मुग्ध हो गयी। उसने अपने हृदय की बात पिता से कही। वह एक अरब मुद्राएँ तथा दिव्य वस्त्राभूषणों को लेकर वज्रस्वामी के पास पहुँचा। किन्तु रुक्मिणी ने वज्रस्वामी के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए उपदेश को सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। और रुक्मिणी तथा वज्रस्वामी के अपूर्व त्याग को देखकर सभी का सिर श्रद्धा से नत हो गया।

वीरनिर्वाण की पाँचवीं-छठी शती में एक विदेशी महिला के द्वारा आर्हती दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख प्राप्त होता है। विशेषावश्यकभाष्य तथा निशीथचूर्णि में वर्णन है कि मुरुण्डराज की विधवा बहिन प्रव्रज्या लेना चाहती थी। मुरुण्डराज ने साध्वियों की परीक्षा लेने हेतु एक आयोजन किया कि कौन साध्वी कैसी है। एक भीमकाय हाथी पर महावत बैठ गया और चौराहे पर वह खड़ा हो गया। जब कोई भी साध्वी उधर से निकलती तब महावत हाथी को साध्वी की ओर बढ़ाते हुए साध्वी को चेतावनी देता कि सभी वस्त्रों का परित्याग कर निर्वसना हो जाय, नहीं तो यह हाथी तुम्हें अपने पाँवों से कुचल डालेगा। अनेक साध्वियाँ, परिव्राजिकाएँ, भिक्षुणियाँ उधर निकलीं। भयभीत होकर उन्होंने वस्त्र का परित्याग किया। अन्त में एक जैन श्रमणी उधर आयी। हाथी ज्यों ही उसकी ओर बढ़ने लगा त्यों ही उसने क्रमशः अपने धर्मोपकरण उधर फेंक दिये, उसके पश्चात् साध्वी हाथी के इधर-उधर घूमने लगी। किन्तु उसने अपना वस्त्र-त्याग नहीं किया। जब जनसमूह ने यह दृश्य देखा तो उनका आक्रोश उभर आया। मुरुण्डराज ने भी संकेत कर हाथी को हस्तीशाला में भिजवाया और उसी साध्वी के पास अपनी बहिन को प्रव्रजित कराया। साहस, सहनशीलता, शान्ति और साधना की प्रतिमूर्ति उस साध्वी का तथा मुरुण्ड राजकुमारी इन दोनों का नाम क्या था, यह ज्ञात नहीं है।

वीरनिर्वाण की छठी शती में आर्यरक्षित की माता साध्वी रुद्रसोमा का नाम भी भुलाया नहीं जा सकता जिसने अपने प्यारे पुत्र को जो गम्भीर अध्ययन कर लौटा था, उसे पूर्वों का अध्ययन करने हेतु आचार्य तोसलीपुत्र के पास प्रेषित किया और सार्द्ध नौ पूर्व का आर्यरक्षित ने अध्ययन किया। रुद्रसोमा की प्रेरणा से ही राज पुरोहित सोमदेव तथा उसके परिवार के अनेकों व्यक्तियों ने आर्हती दीक्षा स्वीकार की और स्वयं उसने भी। उसका यशस्वी जीवन इतिहास की अनमोल सम्पदा है।

वीरनिर्वाण की छठी शती के अन्तिम दशक में साध्वी ईश्वरी का नाम आता है। भीषण दुष्काल से छटपटाते हुए सोपारकनगर का ईभ्भ श्रेष्ठी जिनदत्त था। उसकी पत्नी का नाम ईश्वरी था। बहुत प्रयत्न करने पर भी अन्न प्राप्त नहीं हुआ, अन्त में एक लाख मुद्रा से अंजली भर अन्न प्राप्त किया। उसमें विष मिलाकर सभी ने मरने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निश्चय किया। उस समय मुनि भिक्षा के लिए आये। ईश्वरी मुनि को देखकर अत्यन्त आह्लादित हुई। आर्य वज्रसेन ने ईश्वरी को बताया कि विष मिलाने की आवश्यकता नहीं है। कल से सुकाल होगा। उसी रात्रि में अन्न के जहाज आ गये जिससे सभी के जीवन में सुख-शान्ति की बंसी बजने लगी। ईश्वरी की प्रेरणा से सेठ जिनदत्त ने अपने नागेन्द्र, चन्द्र, निर्वृत्ति और विद्याधर इन चारों पुत्रों के साथ आर्हती दीक्षा ग्रहण की। और उनके नामों से गच्छ और कुल परम्परा प्रारम्भ हुई। साध्वी ईश्वरी ने भी उत्कृष्ट साधना कर अपने जीवन को चमकाया।

इसके पश्चात् भी अनेक साध्वियाँ हुईं, किन्तु क्रमबार उनका उल्लेख या परिचय नहीं मिलता, जिन्होंने अपनी आत्म ऊर्जा, बौद्धिक चातुर्य, नीति-कौशल एवं प्रखर प्रतिभा से जैन शासन की महनीय सेवा की। मैं यह मानता हूँ कि ऐसी अनेक दिव्य प्रतिभाओं ने जन्म लिया है, किन्तु उनके कर्तृत्व का सही मूल्यांकन नहीं हो सका।

हम यहाँ अठारहवीं सदी की एक तेजस्वी स्थानकवासी साध्वी का परिचय दे रहे हैं जिनका जन्म देहली में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम ज्ञात नहीं है और उनका सांसारिक नाम भी क्या था यह भी पता नहीं है। पर उन्होंने आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज के समुदाय में किसी साध्वी के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की थी। ये महान प्रतिभासम्पन्न थीं। इनका श्रमणी जीवन का नाम महासती भागाजी था। इनके द्वारा लिखे हुए अनेकों शास्त्र, रास तथा अन्य ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ श्री अमर जैन ज्ञान भण्डार, जोधपुर में तथा अन्यत्र संग्रहीत हैं। लिपि उतनी सुन्दर नहीं है, पर प्रायः शुद्ध है। और लिपि को देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि लेखिका ने सैकड़ों ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ की होंगी। आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज के नेतृत्व में पंचेवर ग्राम में जो सन्त सम्मेलन हुआ था उसमें उन्होंने भी भाग लिया था। और जो प्रस्ताव पारित हुए उसमें उनके हस्ताक्षर भी हैं।

अनुश्रुति है कि उन्हें बत्तीस आगम कण्ठस्थ थे। एक बार वे देहली में विराज रही थीं। शौच के लिए वे अपनी शिष्याओं के साथ जंगल में पधारीं। वहाँ से लौटने के पश्चात् रास्ते में एक उपवन था उसमें एक बहुत रमणीय स्थान था जो एकान्त था वहाँ पर बैठकर महासती जी स्वाध्याय करने लगी। स्वाध्याय चल रही थी, इधर वृहद् नौ तत्त्व के रचयिता श्रावक दलपतसिंहजी उधर निकले। उन्होंने देखा कि उपवन के वृक्षों के पत्ते दनादन गिर रहे हैं। फूल मुरझा रहे हैं। असमय में पतझड़ को आया हुआ देखकर उन्होंने सोचा इसका क्या कारण है ? इधर-उधर देखा तो उन्हें महासतीजी एकान्त में बैठी हुई दिखायी दीं। श्रावकजी उनकी सेवा में पहुँचे। नमन कर उन्होंने महासती से पूछा—आप क्या कर रही हैं। महासती ने बताया कि मैं स्वाध्याय कर रही हूँ। इस समय चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति की स्वाध्याय चल रही है। श्रावकजी ने नम्रता से निवेदन किया—सद्गुरुणीजी, देखिए कि वृक्ष के पत्ते असमय में गिर रहे हैं, फूल मुरझा रहे हैं। लगता है स्वाध्याय करते समय कहीं असावधानी से स्खलना हो गई है। कृपाकर आपश्री पुनः स्वाध्याय करें। लाला दलपतसिंहजी भी आगम के मर्मज्ञ विद्वान थे। स्वाध्याय की गयी। जहाँ पर स्खलना हुई थी श्रावकजी ने उन्हें बताया। स्खलना का परिष्कार करने पर वृक्षों के पत्ते गिरने बन्द हो गये और फूल मुस्कराने लगे।

महासतीजी का विहार क्षेत्र दिल्ली, पंजाब, जयपुर, जोधपुर, मेड़ता और उदयपुर रहा है—ऐसा प्रशस्तियों के आधार से ज्ञात होता है। महासती भागाजी की अनेक विदुषी शिष्याएँ थीं। उनमें वीराजी प्रमुख थीं। वे भी आगमों के रहस्यों की ज्ञाता और चारित्रनिष्ठा थी। उनकी जन्मस्थली आदि के सम्बन्ध में सामग्री प्राप्त नहीं है। महासती वीराजी की मुख्य शिष्या सद्दाजी थीं जिनका परिचय इस प्रकार है।

राजस्थान के साम्भर ग्राम में वि० सं० १९५७ के पौष कृष्ण दशम को महासती सद्दाजी का जन्म हुआ। उनकी माता का नाम पाटनदे था और पिता का नाम पीथाजीमोदी था। और दो ज्येष्ठ भ्राता थे। उनका नाम मालचन्द और बालचन्द था। सद्दाजी का रूप अत्यन्त सुन्दर था तथा माता-पिता का अपूर्व प्यार भी उन्हें प्राप्त हुआ था। उस समय जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी थे। सुमेरसिंहजी मेहता महाराजा अभयसिंह के मनोनीत अधिकारी थे। उन्होंने उनके पिता के सामने प्रस्ताव रखा चारण के द्वारा सद्दाजी के अपूर्व रूप की प्रशंसा सुनकर अन्त में सद्दाजी का पाणिग्रहण उनके साथ सम्पन्न हुआ। विराट वैभव और मनोनुकूल पत्नी को पाकर मेहताजी भोगों में तल्लीन थे। सद्दाजी को बाल्यकाल से ही धार्मिक संस्कार मिले थे। इस कारण वे प्रतिदिन सामायिक करती थीं और प्रातःकाल व सन्ध्या के समय प्रतिक्रमण भी करती थीं।

एक बार सद्दाजी एक प्रहर तक संवर की मर्यादा लेकर नमस्कार महामन्त्र का जाप कर रहीं थीं, उसी समय दासियाँ घबरायी हुईं और आँखों में आँसू बरसाती हुई दौड़ी आयीं और कहा मालिकन, गजब हो गया। मेहताजी की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदय गति एकाएक रुक जाने से उनका प्राणान्त हो गया है। उन्होंने सदा के लिए आँखें मूंद ली हैं। ये सुनते ही सद्दाजी ने तीन दिन का उपवास कर लिया और दूध-दही, घी, तेल और मिष्ठान्न इन पाँचों विगय का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग कर दिया। भोजन में केवल रोटी और छाछ आदि का उपयोग करना ही रखकर शेष सभी वस्तुओं का त्याग कर दिया। पति मर गया, किन्तु उन्होंने रोने का भी त्याग कर दिया। सास-ससुर दोनों आकर फूट-फूट कर रोने लगे, सद्दाजी ने उन्हें समझाया—अब रोने से कोई फायदा नहीं है। केवल कर्म-बन्धन होगा। इसलिए रोना छोड़ दें। आपका पुत्र आपको छोड़कर संसार से बिदा हो चुका है। ऐसी स्थिति में मैं भी अब संसार में नहीं रहूँगी और श्रमणधर्म को स्वीकार करूंगी। सास और ससुर ने विविध दृष्टियों से समझाने का प्रयास किया किन्तु सद्दाजी की वैराग्य भावना इतनी दृढ़ थी कि वे विचलित नहीं हुईं। देवर रामलाल ने भी सद्दाजी से कहा कि आप संसार का परित्याग न करें। पुत्र को दत्तक लेकर आराम से अपना जीवन यापन करें। किन्तु सद्दाजी इसके लिए प्रस्तुत नहीं थीं। उनके भ्राता मालचन्दजी और बालचन्दजी ने भी आकर बहन को संयम साधना की अतिदुष्करता बतायी। किन्तु सद्दाजी अपने मन्तव्य पर दृढ़ रहीं।

उस समय आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज की आज्ञानुवर्तिनी महासती भागाजी की शिष्या महासती वीराजी जोधपुर में विराज रही थी। मेहता परिवार भी महासतीजी के निर्मल चारित्र से प्रभावित था। उन्होंने कहा तुम महासतीजी के पास सहर्ष प्रव्रज्या ग्रहण कर सकती हो किन्तु हम उन्हें जोधपुर में कभी भी दीक्षा नहीं लेने दे सकते। यदि तुम्हें दीक्षा ही लेनी है तो जोधपुर के अतिरिक्त कहीं भी ले सकती हो। सद्दाजी ने बाडमेर जिले के जसोल ग्राम में वि० सं० १८७७ में महासती वीराजी के पास संयमधर्म स्वीकार किया। दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने विनयपूर्वक अठारह शास्त्र कण्ठस्थ किये, सैकड़ों थोकड़े और अन्य दार्शनिक धार्मिक ग्रन्थ भी। इसके बाद देश के विविध अंचलों में परिभ्रमण कर धर्म की अत्यधिक प्रभावना की।

सद्दाजी की अनेक शिष्याएँ हुईं। उनमें फत्तूजी, रत्नाजी, चेनाजी और लाधाजी ये चार मुख्य थीं। चारों में विशिष्ट विशेषताएँ थीं। महासती फत्तूजी का विहार-क्षेत्र मुख्यरूप से मारवाड़ रहा और उनकी शिष्याएँ भी मारवाड़ में ही विचरण करती रहीं। आज पूज्य श्रीअमरसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय की मारवाड़ में जो साध्वियाँ हैं, वे सभी फत्तूजी के परिवार की हैं और महासती रत्नाजी का विचरण क्षेत्र मेवाड़ में रहा। इसलिए मेवाड़ में जितनी भी साध्वियाँ हैं वे रत्नाजी के परिवार की हैं। महासती चेनाजी में सेवा का अपूर्व गुण था तथा महासती लाधाजी उग्र तपस्विनी थीं। इन दोनों की शिष्या-परम्परा उपलब्ध नहीं होती है।

महासती श्री सद्दाजी ने अनेक मासखमण तथा कर्मचूर और विविध प्रकार के तप किये। तप आदि के कारण शारीरिक शक्ति विहार के लिए उपयुक्त न रहने पर वि० सं० १९०१ में वे जोधपुर में स्थिरवास ठहरीं। महासती फत्तूजी और रत्नाजी को उन्होंने आदेश दिया कि वे घूम-घूम कर अत्यधिक धर्मप्रचार करें। उन्होंने राजस्थान के विविध अंचलों में परिभ्रमण कर अनेकों बहनों को प्रव्रज्या दी। सं० १९२१ में महासती फत्तूजी और रत्नाजी ने विचार किया कि इस वर्ष हम सब गुरुणीजी की सेवा में ही वर्षावास करेंगी। सभी महासती सद्दाजी की सेवा में पहुँच गयीं। आषाढ़ शुक्ला पंचमी के दिन महासती सद्दाजी ने तिविहार संथारा धारण किया। सद्गुरुणीजी को संथारा धारण किया हुआ देखकर उनकी शिष्या महासती लाधा जी ने भी संथारा कर लिया और सद्गुरुणी जी से कुछ दिनों के पूर्व ही स्वर्ग पहुँच गईं। संथारा चल रहा था, महासतीजी ने अपनी शिष्याओं को बुलाकर अंतिम शिक्षा देते हुए कहा—"अपनी परम्परा में ब्राह्मण और वैश्य के अतिरिक्त अन्य वर्णवाली महिलाओं को दीक्षा नहीं देना, तथा मैंने अन्य जो समाचारी बनायी है, उसका पूर्णरूप से पालन करना। तुम वीरांगना हो। संयम के पथ पर निरन्तर बढ़ती रहना। चाहे कितने भी कष्ट आवें उन कष्टों से घबराना नहीं। सद्गुरुणीजी की शिक्षा को सुनकर सभी साध्वियाँ गद्गद हो गयीं।" उन्हें लगा कि अब सद्गुरुणीजी लम्बे समय की मेहमान नहीं हैं। हमें उनकी आज्ञा का सम्यक् प्रकार से पालन करना ही चाहिए। भाद्रपद सुदी एकम के दिन पचपन दिन का संथारा कर वे स्वर्ग पधारीं। इस प्रकार पैंतालीस वर्ष तक महासती सद्दाजी ने संयम की साधना, तप की आराधना की। आज भी महासती सद्दाजी की शिष्या-परिवार में पचास से भी अधिक साध्वियाँ हैं।

महासती रत्नाजी की शिष्या-परिवार में शासन-प्रभाविका लछमाजी का नाम विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनका जन्म उदयपुर राज्य के तिरपाल ग्राम में सं० १९१० में हुआ था। आपके पिता का नाम रिखबचन्दजी माण्डोत और माता का नाम नन्दूबाई था। आपके दो भ्राता थे किसनाजी और वच्छराज जी। आपका पाणिग्रहण मादडा गाँव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साँकलचन्दजी चौधरी के साथ हुआ। कुछ समय के पश्चात् साँकलचन्दजी के शरीर में भयंकर व्याधि उत्पन्न हुई और उन्होंने सदा के लिए आँख मूंद ली। उस समय महासती रत्नाजी की शिष्या गुलाबकुँवरजी मादडा पधारीं। वे महान तपस्विनी थीं, उन्होंने अपने जीवन में अनेकों मासखमण किये थे। उनके उपदेश को सुनकर लछमाजी के मन में वैराग्य भावना उद्बुद्ध हुई। और वि० सं० १६२८ में भगवती दीक्षा ग्रहण की। वे प्रकृति से भद्र, विनीत और सरल मानसवाली थीं।

एक बार वे अपनी सद्गुरुणीजी के साथ बड़ी सादडी में विराज रही थीं। सती-वृन्द कमरे में आहार कर रही थीं कि एक बालक आँखों से आँसू बरसाता हुआ आया। बालक को रोते हुए देखकर लछमाजी ने पूछा—तू क्यों रो रहा है? बालक ने रोते हुए कहा—मैं गट्टूलालजी मेहता के यहाँ नौकरी करता हूँ। मेरा नाम वछराज है। आज सेठ के वहाँ मेहमान आये हैं और सभी मिष्ठान खा रहे हैं। पर मेरे नसीब में रूखी-सूखी रोटी भी कहाँ है? क्षुधा से छटपटाते हुए मैंने भोजन की याचना की। किन्तु उन्होंने मुझे दुत्कार कर घर से निकाल दिया कि तुझे माल खाना है या नौकरी करनी है। मैं अपने भाग्य पर पश्चात्ताप कर रहा हूँ। लछमजी ने बालक की ओर देखा। उसके चेहरे पर अपूर्व तेज था। उन्होंने उसे आश्वासन देते हुए कहा—रोओ मत। कल से तेरे सभी दुःख मिट जायेंगे। बालक हँसता और नाचता हुआ चल दिया।

छोटी सादडी में नागोरी श्रेष्ठी के लड़का नहीं था। पास में लाखों की सम्पत्ति थी। सेठानी के कहने से सेठ जी बालक वछराज को दत्तक लेने के लिए बड़ी सादडी पहुँचे और उसको अपना दत्तक पुत्र घोषित कर दिया। बालक ने महासती के चरणों में गिरकर कहा—सद्गुरुणीजी, आपका ही पुण्य प्रताप है कि मुझे यह विराट सम्पत्ति प्राप्त हो रही है। आपकी भविष्यवाणी पूर्ण सत्य सिद्ध हुई। महासती लछमाजी के सहज रूप से निकले हुए शब्द सत्य सिद्ध होते थे। उनकी वाचा सिद्ध थी। उनके जीवन के ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिसमें उनकी चमत्कारपूर्ण जीवन-झाँकियाँ हैं। विस्तारभय से मैं उसे यहाँ नहीं दे रहा हूँ।

महासती लछमाजी सं० १६५५ में गोगुन्दा पधारीं। मन्द ज्वर के कारण शरीर शिथिल हो चुका था। अतः चैत्र वदी अष्टमी के दिन उन्होंने संथारा ग्रहण किया। रात्रि में तीन दिन के पश्चात् एक देव ने प्रकट होकर उन्हें नाना प्रकार के कष्ट दिये और विविध प्रकार के सुगंधित भोजन से भरा हुआ थाल सामने रखकर कहा कि भोजन कर लो। किन्तु सतीजी ने कहा—मैं भोजन नहीं कर सकती। पहला कारण यह है कि देवों का आहार हमें कल्पता नहीं है। दूसरा कारण यह है कि रात्रि है। तीसरा कारण यह है कि मेरे संथारा है। इसलिए मैं आहार ग्रहण नहीं कर सकती। देव ने कहा—जब तक तुम आहार ग्रहण नहीं करोगी तब तक हम तुम्हें कष्ट देंगे। आपने कहा—मैं कष्ट से नहीं घबराती। एक क्षण भी प्रकाश करते हुए जीना श्रेयस्कर है किन्तु पथ-भ्रष्ट होकर जीना उपयुक्त नहीं है। तुम मेरे तन को कष्ट दे सकते हो, किन्तु आत्मा को नहीं। आत्मा तो अजर अमर है। अन्त में देवशक्ति पराजित हो गयी। उसने उनकी दृढ़ता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। संथारे के समय अनेकों बार देव ने केशर की और सूखे गुलाब के पुष्पों की वृष्टि की। दीवालों पर केशर और चन्दन की छाप लग जाती थी। संगीत की मधुर स्वर लहरियाँ सुनायी देती थीं और देवियों की पायल ध्वनि सुनकर जन-मानस को आश्चर्य होता था कि ये अदृश्य ध्वनियाँ कहाँ से आ रही हैं। इस प्रकार ६७ दिन तक संथारा चला। ज्येष्ठ वदी अमावस्या वि० सं० १६५६ के दिन उनका संथारा पूर्ण हुआ और वे स्वर्ग पधारीं।

परम विदुषी महासती श्री सद्दाजी की शिष्याओं में महासती श्री रत्नाजी परम विदुषी सती थीं। उनकी एक शिष्या महासती रंभाजी हुईं। रंभाजी प्रतिभा की धनी थीं। उनकी सुशिष्या महासती श्री नवलाजी हुईं। नवलाजी परम विदुषी साध्वी थीं। उनकी प्रवचन शैली अत्यन्त मधुर थी। जो एक बार आपके प्रवचन को सुन लेता वह आपकी त्याग, वैराग्ययुक्त वाणी से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। आपकी अनेक शिष्याएँ हुईं। उनमें से पाँच शिष्याओं के नाम और उनकी परम्परा उपलब्ध होती है। सर्वप्रथम महासती नवलाजी की सुशिष्या कंसुवाजी थीं। उनकी एक शिष्या हुईं। उनका नाम सिरेकुँवरजी था और उनकी दो शिष्याएँ हुईं। एक का नाम साकरकुँवरजी और दूसरी का नाम नजरकुँवरजी था। महासती साकरकुँवरजी की कितनी शिष्याएँ हुईं यह प्राचीन साक्ष्यों के अभाव में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु महासती नजरकुँवरजी की पाँच शिष्याएँ हुईं। महासती नजरकुँवरजी एक विदुषी साध्वी थीं। इनकी जन्मस्थली उदयपुर राज्य के वल्लभनगर के सन्निकट मेनार गाँव थी। आप जाति से ब्राह्मण थीं। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के कारण आप में स्वाभाविक प्रतिभा थी। आगम साहित्य का अच्छा परिज्ञान था। आपकी पाँच शिष्याओं के नाम इस प्रकार हैं—(१) महासती रूपकुँवरजी—यह उदयपुर के सन्निकट देलवाड़ा ग्राम की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवासिनी थीं। (२) महासती प्रतापकुँवरजी। यह भी उदयपुर राज्य के वीरपुरा ग्राम की थीं। (३) महासती पाटूजी—ये समदड़ी (राजस्थान) की थीं। इनके पति का नाम गोडाजी लुंकड था। वि० सं० १९७८ में इनकी दीक्षा हुई। (४) महासती चौथाजी—इनकी जन्मस्थली उदयपुर राज्य के बंबोरा ग्राम में थी और इनकी ससुराल वाटी ग्राम में थी, (५) महासती एजाजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के शिशोदे ग्राम में हुआ, आपके पिता का नाम भेरूलालजी और माता का नाम कत्थूबाई था। आपका पाणिग्रहण वारी (मेवाड़) में हुआ और वहीं पर महासतीजी के उपदेश से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण की। वर्तमान में इनमें से चार साध्वियों का स्वर्गवास हो चुका है केवल महासती एजाजी इस समय विद्यमान हैं। उनकी कोई शिष्याएँ नहीं है। इस प्रकार यह परम्परा यहाँ तक रही है।

महासती श्री नवलाजी की द्वितीय शिष्या गुमानाजी थीं। उनकी शिष्या-परम्पराओं में बड़े आनन्दकुँवरजी एक विदुषी महासती हुई। वे बहुत ही प्रभावशाली थीं। उनकी सुशिष्याएँ अनेक हुईं, पर उन सभी के नाम मुझे उपलब्ध नहीं हुए। उनकी प्रधान शिष्या महासती श्री बालब्रह्मचारिणी अभयकुँवरजी हुईं। आपका जन्म वि० सं० १९५२ फाल्गुन वदी १२ मंगलवार को राजवी के बाटेला गाँव (मेवाड़) में हुआ। आपने अपनी मातेश्वरी श्री हेमकुँवरजी के साथ महासती आनन्दकुँवरजी के उपदेश से प्रभावित होकर वि० सं० १९६० मृगशिर सुदी १३ को पाली-मारवाड़ में दीक्षा ग्रहण की। आपको शास्त्रों का गहरा अभ्यास था। आपका प्रवचन श्रोताओं के दिल को आकर्षित करने वाला होता था। जीवन की सान्ध्यबेला में नेत्र-ज्योति चली जाने से आप भीम (मेवाड़) में स्थिरवास रहीं और वि० सं० २०३३ के माघ में आपश्री का संथारा सहित स्वर्गवास हुआ। आपश्री की दो शिष्याएँ हुईं—महासती बदामकुँवरजी तथा महासती जसकुँवरजी। महासती बदामकुँवरजी का जन्म वि० सं० १९६१ वसन्त पंचमी को भीम गाँव में हुआ। आपका पाणिग्रहण भी वहीं हुआ और वि० संवत् १९७८ में विदुषी महासती अभयकुँवरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। आप सेवाभावी महासती थीं। सं० २०३३ में आपका भीम में स्वर्गवास हुआ। महासती श्री जसकुँवरजी का जन्म १९५३ में पदराडा ग्राम में हुआ। आपने महासती श्री आनन्दकुँवरजी के पास सं० १९८५ में कम्बोल ग्राम में दीक्षा ग्रहण की और महासती श्री अभयकुँवरजी की सेवा में रहने से वे उन्हें अपनी गुरुणी की तरह पूजनीय मानती थीं। आप में सेवा की भावना अत्यधिक थी। सं० २०३३ में भीम में स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार यह परम्परा यहाँ तक चली।

महासती श्री नवलाजी की तृतीय शिष्या केसरकुँवरजी थीं। उनकी सुशिष्या छगनकुँवरजी हुईं।

महासती छगनकुँवरजी—आप कुशलगढ़ के सन्निकट केलवाड़े ग्राम की निवासी थीं। लघुवय में ही आपका पाणिग्रहण हो गया था। किन्तु कुछ समय के पश्चात् पति का देहान्त हो जाने से आपके अन्तर्मानस में धार्मिक साधना के प्रति विशेष रुचि जागृत हुई। आपका ससुर पक्ष मूर्तिपूजक आम्नाय के प्रति विशिष्ट रूप से आकर्षित था। आप तीर्थयात्रा की दृष्टि से उदयपुर आयीं। कुछ बहिनें प्रवचन सुनने हेतु महासती गुलाबकुँवरजी के पास जा रही थीं। आपने उनसे पूछा कि कहाँ जा रही हैं। उन्होंने बताया कि हम महासतीजी के प्रवचन सुनने जा रही हैं। उनके साथ आप भी प्रवचन सुनने हेतु पहुँचीं। महासतीजी के वैराग्यपूर्ण प्रवचन को सुनकर अन्तर्मानस में तीव्र वैराग्य भावना जाग्रत हुई। आपने महासतीजी से निवेदन किया कि मेरी भावना त्याग-मार्ग को ग्रहण करने की है। महासतीजी ने कहा—कुछ समय तक धार्मिक अध्ययन कर, फिर अन्तिम निर्णय लेना अधिक उपयुक्त रहेगा। बुद्धि तीक्ष्ण थी। अतः कुछ ही दिनों में काफी थोकड़े, बोल, प्रतिक्रमण व आगमों को कण्ठस्थ कर लिया। परिवार वालों ने आपकी उत्कृष्ट भावना देखकर दीक्षा की अनुमति प्रदान की। आप अपने साथ तीर्थयात्रा करने हेतु विराट् सम्पत्ति भी लायी थीं। परिवार वालों ने कहा—हम इस सम्पत्ति को नहीं लेंगे, अतः उस सारी सम्पत्ति का उन्होंने दान कर दिया। आपका प्रवचन बहुत ही मधुर होता था। आपकी अनेक शिष्याएँ थीं। उनमें महासती फूलकुँवरजी मुख्य थीं। वि० सं० १९६५ में संथारे के साथ आपका उदयपुर में स्वर्गवास हुआ।

महासती ज्ञानकुँवरजी—महासती छगनकुँवरजी की एक शिष्या विदुषी महासती ज्ञानकुँवरजी थीं। आपका जन्म वि० सं० १९०५ में उम्मड ग्राम में हुआ और बम्बोरा के शिवलालजी के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ था। सं० १९४० में आपके एक पुत्र हुआ जिसका नाम हजारीमल रखा गया। आचार्यप्रवर-पूज्यश्री पूनमचन्दजी महाराज तथा महासती छगनकुँवरजी के उपदेश से प्रभावित होकर आपने १९५० में महासती श्रीछगनकुँवरजी के पास जालोट में दीक्षा ग्रहण की। आपके पुत्र ने ज्येष्ठ शुक्ला १३ रविवार के दिन समदड़ी में दीक्षा ग्रहण की। उनका नाम ताराचन्दजी महाराज रखा गया। वे ही आगे चलकर उपाध्याय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के गुरु बने। महासती ज्ञानकुँवरजी महाराज बहुत ही सेवाभावी तथा तपोनिष्ठा साध्वी थीं। महासती श्री गुलाबकुँवरजी के उदयपुर स्थानापन्न विराजने पर आपश्री ने वहाँ पर वर्षों तक रहकर सेवा की और वि० सं० १९८७ में उदयपुर में संथारा सहित उनका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासती फूलकुँवरजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के दुलावतों के गुढ़े में वि० सं० १६२१ में हुआ। आपके पिता का नाम भगवानचन्दजी और माता का नाम चुन्नीबाई था। लघुवय में आपका पाणिग्रहण तीरपाल में हुआ। किन्तु कुछ समय के पश्चात् पति का देहान्त हो जाने से महासती छगनकुँवरजी के उपदेश को सुनकर विरक्ति हुई और १७ वर्ष की उम्र में आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। आपकी बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण थी। आपने अनेकों शास्त्र कंठस्थ किये। आपकी प्रवचन शैली भी अत्यन्त मधुर थी। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर निम्न शिष्याएँ बनीं—(१) महासती माणककुँवरजी, (२) महासती धूलकुँवरजी, (३) महासती आनन्दकुँवरजी, (४) महासती लाभकुँवरजी, (५) महासती सोहनकुँवरजी, (६) महासती प्रेमकुँवरजी और (७) महासती मोहनकुँवरजी। आपने पचास वर्ष तक संयम की उत्कृष्ट साधना की। वि० सं० १६८६ में आपको ऐसा प्रतीत होने लगा कि मेरा शरीर लम्बे समय तक नहीं रहेगा। आपने अपनी शिष्याओं को कहा कि मुझे अब संथारा करना है। किन्तु शिष्याओं ने निवेदन किया कि अभी आप पूर्ण स्वस्थ हैं, ऐसी स्थिति में संथारा करना उचित नहीं है। उस समय आपने शिष्याओं के मन को दुःखाना उचित नहीं समझा। आपने अपने मन से ही फाल्गुण शुक्ला बारस के दिन संथारा कर लिया। दूसरे दिन जब साध्वियाँ भिक्षा के लिए जाने लगीं, तब उन्होंने आपसे निवेदन किया कि हम आपके लिए भिक्षा में क्या लावें तब आपने कहा कि मुझे आहार नहीं करना है। तीन दिन तक यही क्रम चला चौथे दिन साध्वियों के आग्रह पर आपने स्पष्ट किया कि मैंने संथारा कर लिया है। चैत्र बदी अष्टमी को बारह दिन का संथारा पूर्ण कर आप स्वर्ग पधारीं।

महासती माणककुँवरजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के कानोड में वि० सं० १६१० में हुआ। आपकी प्रकृति सरल, सरस थी। सेवा की भावना अत्यधिक थी। ७५ वर्ष की उम्र में वि० सं० १६८५ के आसोज महीने में आपका उदयपुर में स्वर्गवास हुआ।

महासती धूल कुँवरजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के मादडा ग्राम में वि० सं० १६३५ माघ बदी अमावस्या को हुआ। आपके पिताश्री पन्नालाल जी चौधरी और माता का नाम नाथीबाई था। माता-पिता ने दीर्घकाल के पश्चात् सन्तान होने से आपका नाम धूलकुँवर रखा। तेरह वर्ष की लघुवय में वास निवासी चिमनलाल जी ओरडिया के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। कुछ समय के पश्चात् ही पति का देहान्त होने पर, आपकी भावना महासती फूलकुँवर जी के उपदेश को सुनकर संयम ग्रहण करने की हुई। किन्तु पारिवारिक जनों के अत्याग्रह के कारण आप संयम न ले सकीं और वि० सं० १६५६ में फाल्गुन बदी तेरस को वास ग्राम में महासती फूलकुँवरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। विनय, वैयावृत्य और सरलता आपके जीवन की मुख्य विशेषताएँ थीं। आपने अनेक शास्त्रों को भी कण्ठस्थ किया था। लगभग ३०० थोकड़े आपको कण्ठस्थ थे। आपके महासती आनन्दकुँवरजी, महासती सौभाग्यकुँवरजी, महासती शम्भुकुँवरजी, बालब्रह्मचारिणी शीलकंवरजी, महासती मोहनकुँवरजी, महासती कंचनकुँवरजी, महासती सुमनवतीजी, महासती दयाकुँवरजी, आदि शिष्याएँ थीं। श्रद्धेय सगुद्रुवर्य पुष्करमुनिजी महाराज को भी प्रथम आपके उपदेश से ही वैराग्य भावना जागृत हुई थी। आपका विहार क्षेत्र मेवाड़, मारवाड़, मध्यप्रदेश, अजमेर, ब्यावर था। वि० सं २००३ में आप गोगुन्दा ग्राम में स्थानापन्न विराजीं और वि० २०१३ में कार्तिक शुक्ला ग्यारस को २४ घंटे के संथारे के पश्चात् आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती लाभकुँवरजी—आपका जन्म वि० सं० १६३३ में उदयपुर राज्य के ढोल ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम मोतीलालजी ढालावत और माता का नाम तीजबाई था। आपका पाणिग्रहण सायरा के कावेडिया परिवार में हुआ था। लघुवय में ही पति का देहान्त हो जाने पर महासती फूलकुँवरजी के उपदेश से प्रभावित होकर वि० सं० १६५६ में सादडी मारवाड में दीक्षा ग्रहण की। आपका कण्ठ बहुत मधुर था। व्याख्यान-कला सुन्दर थी। आपकी दो शिष्याएँ हुईं—महासती लहरकुँवरजी और दाखकुंवरजी। आपका स्वर्गवास २००३ में श्रावण में यशवंतगढ़ में हुआ।

महासती लहरकुँवरजी—आपका जन्म नान्देशमा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम सूरजमलजी सिंघवी और माता का नाम फूलकुंवर बाई था। आपका पाणिग्रहण ढोल निवासी गेगराजजी ढालावत के साथ हुआ। पति का देहान्त होने पर कुछ समय के पश्चात् एक पुत्री का भी देहावसान हो गया। एक पुत्री जिसकी उम्र सात वर्ष की थी उसे उसकी दादी को सौंपकर वि० सं० १६८१ में ज्येष्ठ सुदी बारस को नान्देशमा ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। आपकी प्रकृति मधुर व मिलनसार थी। स्तोक साहित्य का आपने अच्छा अभ्यास किया। आपकी एक शिष्या बनी जिनका नाम खमानकुँवरजी है।† आपका स्वर्गवास २०२६ माह बदी अष्टमी को १२ घंटे के संथारे से सायरा में हुआ।

† देखिए—परिचय वर्तमान परम्परा में साध्वियाँ—ले० राजेन्द्र मुनि साहित्यरत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासती प्रेम कुँवरजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के गोगुन्दा ग्राम में हुआ और आपका पाणिग्रहण उदयपुर में हुआ था। पति का देहान्त होने पर महासती फूलकुँवरजी के उपदेश से प्रभावित होकर दीक्षा ग्रहण की। आप प्रकृति से सरल, विनीत और क्षमाशील थीं। वि० सं० १६६४ में आपका उदयपुर में स्वर्गवास हुआ। आपकी एक शिष्या थी जिनका नाम विदुषी महासती पानकुँवरजी था, जो बहुत ही सेवाभाविनी थीं और जिनका स्वर्गवास वि० सं० २०२४ के पौष माह में गोगुन्दा ग्राम में हुआ।

महासती मोहनकुँवरजी—आपका जन्म उदयपुर राज्य के वाटी ग्राम में हुआ। आप लोढा परिवार की थीं। आपका पाणिग्रहण मोलेरा ग्राम में हुआ था। महासती फूलकुँवरजी के उपदेश को श्रवण कर चारित्रधर्म ग्रहण किया। आपको थोकड़ों का अच्छा अभ्यास था और साथ ही मधुर व्याख्यानी भी थी।

महासती सौभाग्यकुँवरजी—आपका जन्म बड़ी सादडी नागोरी परिवार में हुआ था और बड़ी सादडी के निवासी प्रतापमल जी मेहता के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। आपके एक पुत्र भी हुआ। महासती श्री धूल कुँवरजी के उपदेश को सुनकर आपने प्रव्रज्या ग्रहण की। आपकी प्रकृति भद्र थी। ज्ञानाभ्यास साधारण था। वि० सं० २०२७ आसोज सुदी तेरस को तीन घंटे के संथारे के साथ गोगुन्दा में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती शम्भुकुँवरजी—आपका जन्म वि० सं १६५८ में वागपुरा ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम गेगराजजी धर्मावत और माता का नाम नाथीबाई था। खाखड़ निवासी अनोपचन्द जी वनोरिया के सुपुत्र धनराजजी के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। आपके दो पुत्रियाँ हुईं। बड़ी पुत्री भूरबाई का पाणिग्रहण उदयपुर निवासी चन्दनमल जी कर्णपुरिया के साथ हुआ। कुछ समय पश्चात् पति का निधन होने पर आप उदयपुर में अपनी पुत्री के साथ रहने लगीं। महासती धूलकुँवरजी के उपदेश को सुनकर वैराग्य भावना उद्बुद्ध हुई। अपनी लघु पुत्री अचरज बाई के साथ वि० सं० १६८२ फाल्गुन शुक्ला द्वितीय को खाखड ग्राम में दीक्षा ग्रहण की। पुत्री का नाम शीलकुँवरजी रखा गया। आपको थोकड़ों का तथा आगम साहित्य का अच्छा परिज्ञान था। आपके प्रवचन वैराग्यवर्धक होते थे। वि० सं० २०१८ में आप गोगुन्दा में स्थिरवास विराजीं। वि० सं० २०२३ के अषाढ़ बदी तेरस को संथारापूर्वक स्वर्गवास हुआ। आपकी प्रकृति भद्र व सरल थी। सेवा का गुण आप में विशेष रूप से था।

इसी परम्परा में परम विदुषी महासती श्री शीलकुँवरजी महाराज वर्तमान में हैं। महासती शीलकुँवरजी की महासती मोहनकुँवरजी, महासती सायरकुँवरजी, विदुषी महासती श्री चन्दनबालाजी, महासती श्री चेलनाजी, महासती साधनाकुँवरजी और महासती विनयप्रभाजी आदि अनेक आपकी सुशिष्याएँ हैं जिनमें बहुत सी प्रभावशाली विचारक व वक्ता हैं।

महासती नवलाजी की चतुर्थ शिष्या **जसाजी** हुईं। उनके जन्म आदि वृत्त के सम्बन्ध में सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी है। उनकी शिष्या-परम्पराओं में महासती श्री **लाभकुँवरजी** थीं। इनका जन्म उदयपुर राज्य में कंबोल ग्राम में हुआ। इन्होंने लघुवय में दीक्षा ग्रहण की। ये बहुत ही निर्भीक वीरांगना थीं। एक बार अपनी शिष्याओं के साथ खमनोर (मेवाड़) ग्राम से सेमल गाँव जा रही थीं। उस समय साथ में अन्य कोई भी गृहस्थ श्रावक नहीं थे, केवल साध्वियाँ ही थीं। उस समय सशस्त्र चार डाकू आपको लूटने के लिए आ पहुँचे। अन्य साध्वियाँ डाकुओं के डरावने रूप को देखकर भयभीत हो गयीं। डाकू सामने आये। महासतीजी ने आगे बढ़कर उन्हें कहा—तुम वीर हो, क्या अपनी बहू-बेटी साध्वियों पर हाथ उठाना तुम्हारी वीरता के अनुकूल है ? तुम्हें शरम आनी चाहिए। इस वीर भूमि में तुम साध्वियों के वस्त्र आदि लेने पर उतारू हो रहे हो। क्या तुम्हारा क्षात्रतेज तुम्हें यही सिखाता है ? इस प्रकार महासती के निर्भीकतापूर्वक वचनों को सुनकर डाकुओं के दिल परिवर्तित हो गये। वे महासती के चरणों में गिर पड़े और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि हम भविष्य में किसी बहन या माँ पर हाथ नहीं उठायेंगे और न बालकों पर ही। डाका डालना तो हम नहीं छोड़ सकते, पर इस नियम का हम दृढ़ता से पालन करेंगे।

एक बार महासती लाभकुँवरजी चार शिष्याओं के साथ देवरिया ग्राम में पधारीं। वहाँ पर एक बहुत ही सुन्दर मकान था। एक श्रावक ने कहा—महासतीजी यह मकान आप सतियों के ठहरने के लिए बहुत ही साताकारी रहेगा। अन्य श्रावकगण मौन रहे। महासतीजी वहाँ पर ठहर गयीं। महासतीजी ने देखा उस मकान में पलंग बिछा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ था। उस पर गादी-तकिये बिछाये हुए थे तथा इत्र और पुष्पों की मधुर सौरभ से मकान सुवासित था। रात्रि में कोई भी बहिन महासती के दर्शन के लिए वहाँ उपस्थित नहीं हुई। महासतीजी को पता लग गया कि इस मकान में अवश्य ही भूत और प्रेत का कोई उपद्रव है। महासती लाभकुँवरजी ने सभी शिष्याओं को आदेश दिया कि सभी आकर मेरे पास बैठें। आज रात्रि भर हम अखण्ड नवकार मंत्र का जाप करेंगी। जाप चलने लगा। एक साध्वीजी को जरा नींद आने लगीं। ज्यों ही वे सोईं त्यों ही प्रेतात्मा उस महासती की छाती पर सवार हो गयी जिससे वह चिल्लाने लगी। महासती लाभकुंवरजी ने आगे बढ़कर उस प्रेत को ललकारा कि तुझे महासतियों को परेशान करते हुए लज्जा नहीं आती। हमने तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। महासती की गंभीर गर्जना को सुनकर प्रेतात्मा एक ओर हो गया। महासती लाभकुँवरजी ने सभी साध्वियों से कहा जब तक तुम जागती रहोगी तब तक प्रेतात्मा का किंचित् भी जोर न चलेगा। जागते समय जप चलता रहा। किन्तु लंबा विहार कर आने के कारण महासतियाँ थकी हुई थीं। अतः उन्हें नींद सताने लगी। ज्योंही दूसरी महासती नींद लेने लगी त्यों ही प्रेतात्मा उन्हें घसीट कर एक ओर ले चला। गहरा अंधेरा था महासती लाभकुंवरजी ने ज्यों ही अन्धेरे में देखा कि प्रेतात्मा उनकी साध्वी को घसीट कर ले जा रहा है, नवकार मंत्र का जाप करती हुईं वे वहाँ पहुँचीं और प्रेतात्मा के चंगुल से साध्वी को छुड़ाकर पुनः अपने स्थान पर लायीं और रात भर जाप करती हुईं पहरा देती रहीं। प्रातः होने पर उनके तपःतेज से प्रभावित होकर महासतीजी से क्षमा माँगकर प्रेतात्मा वहाँ से चला गया। महासतीजी ने श्रावकों को उपालंभ देते हुए कहा—इस प्रकार भयप्रद स्थान में साध्वियों को नहीं ठहराना चाहिए। श्रावकों ने कहा—हमने सोचा कि हमारी गुरुणीजी बड़ी ही चमत्कारी हैं, इसलिए इस मकान का सदा के लिए संकट मिट जायगा अतः उस श्रावक की प्रार्थना करने पर मौन रहे, अब क्षमा-प्रार्थी हैं। महासतीजी ने कहा—संकट तो मिट गया पर हमें कितनी परेशानी हुई।

इस प्रकार महासतीजी के जीवन में अनेकों घटनाएँ घटीं किन्तु उनके ब्रह्मचर्य के तेज व जप-साधना के कारण सभी उपद्रव शांत रहे। महासती श्री लाभकुँवरजी की अनेक शिष्याओं में एक शिष्या महासती **छोटे आनन्द कुंवरजी** थीं। आपकी जन्मस्थली उदयपुर राज्य के कमोल ग्राम में थी। ये बहुत ही मधुरभाषिणी थीं। उनके जीवन में त्याग की प्रधानता थी। इसलिए उनके प्रवचनों का असर जनता के अन्तर्मानस पर सीधा होता था। आप जहाँ भी पधारीं वहाँ आपके प्रवचनों से जनता मंत्रमुग्ध होती रही। आपकी अनेक शिष्यायें हुईं। उनमें महासती **मोहनकुँवरजी** महाराज और **लहरकुँवरजी** महाराज इन दो शिष्याओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

महासती **मोहनकुँवरजी** का जन्म उदयपुर राज्य के भूताला ग्राम में हुआ। उनका गृहस्थाश्रम का नाम मोहनबाई था। जाति से आप ब्राह्मण थीं। नौ वर्ष की लघुवय में उनका पाणिग्रहण हो गया। वह पति के साथ एक बार तीर्थयात्रा के लिए गुजरात आयीं। भडोच के सन्निकट नरमदा में स्नान कर रही थीं कि नदी में तीव्र पानी का एक प्रवाह आ गया जिससे अनेक व्यक्ति जो किनारे पर स्नान कर रहे थे पानी में बह गये। मोहनबाई का पति भी बह गया जिससे ये विधवा हो गयीं। उस समय महासती आनन्दकुँवरजी विहार करती हुई भूताले पहुँचीं। उनके उपदेश से प्रभावित हुईं। मन में वैराग्य-भावना लहराने लगी। किन्तु उनके चाचा मोतीलाल ने अनेक प्रयास किये कि उनका वैराग्य रंग फीका पड़ जाय। अनेक बार उन्हें थाने के अन्दर कोठरी में बन्द कर दिया, पर वे सभी परीक्षाओं में समुत्तीर्ण हुईं। अन्त में मोतीलालजी उन्हें महाराणा फतहसिंह के पास ले गये। महाराणाजी ने भी उनकी परीक्षा ली। किन्तु उनकी दृढ़ वैराग्य-भावना देखकर दीक्षा की अनुमति प्रदान कर दी जिससे सोलह वर्ष की उम्र में आर्हती दीक्षा ग्रहण की। खूब मन लगाकर अध्ययन किया। आपकी दीक्षा के सोलह वर्ष के पश्चात् आपका वर्षावास अपनी सद्गुरुणी के साथ उदयपुर में था। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा की रात्रि में वे सोयी हुई थीं। उन्होंने देखा एक दिव्य रूप सामने खड़ा है और वह आवाज दे रहा है कि जाग रही हैं या सो रही हैं? तत्क्षण वे उठकर बैठ गयीं और पूछा—आप कौन हैं? और क्यों आये हैं? देव ने कहा—यह न पूछो, देखो तुम्हारा अन्तिम समय आ चुका है। कार्तिक सुदी प्रतिपदा के दिन नौ बजे तुम अपनी नश्वर देह का परित्याग कर दोगी, अतः संथारा आदि कर अपने जीवन का उद्धार कर सकती हो। यह कहकर देव अन्तर्धान हो गया। महासती आनन्दकुंवर जी जो सन्निकट ही सोयी हुई थीं, उन्होंने सुना और पूछा किससे बात कर रही हो? उन्होंने महासती से निवेदन किया कि मेरा अन्तिम समय आ चुका है, इसलिए मुझे संथारा करा दें। महासतीजी ने कहा—अभी तेरी बत्तीस वर्ष की उम्र है, शरीर में किसी भी प्रकार व्याधि नहीं है, अतः मैं संथारा नहीं करा सकती। उस समय उदयपुर में आचार्य श्रीलालजी महाराज का भी वर्षावास था; उन्होंने भी अपने शिष्यों को भेजकर महासती से संथारा न कराने का आग्रह किया और महाराणा फतहसिंहजी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञात हुआ तो उन्होंने भी पुछवाया कि असमय में संथारा क्यों कर रही हो; तब महासती ने कहा मैं स्वेच्छा से संथारा कर रही हूँ, मैं मेवाड़ की वीरांगना हूँ। स्वीकृत संकल्प से पीछे हटने वाली नहीं हूँ। अन्त में संथारा ग्रहण किया और गौतम प्रतिपदा के दिन निश्चित समय पर उनका स्वर्गवास हुआ।

महासती **लहरकुँवरजी** का जन्म उदयपुर राज्य के सलोदा ग्राम में हुआ और आपका पाणिग्रहण भी सरोदा में हुआ। किन्तु लघुवय में ही पति का देहान्त हो जाने से महासती श्री आनन्दकुँवरजी के पास दीक्षा ग्रहण की। आगम साहित्य का अच्छा अभ्यास किया। एक बार सायरा ग्राम में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और तेरापंथ की सतियों के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। आपने अपने अकाट्य तर्कों से उन्हें परास्त कर दिया। आपकी प्रकृति बहुत ही सरल थी। आपकी वाणी में मिश्री सा माधुर्य था। सं० २००७ में अपका वर्षावास यशवन्तगढ़ (मेवाड़) में था। शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई और संथारे के साथ आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी दो शिष्याएँ हुई—महासती **सज्जनकुँवरजी** और महासती **कंचनकुँवरजी**।

महासती **सज्जन कुँवरजी** का जन्म उदयपुर राज्य के तिरपाल ग्राम के बंबोरी परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम भैरूलालजी और माता का नाम रंगूबाई था। १३ वर्ष की अवस्था में आपका पाणिग्रहण कमोल के ताराचन्दजी दोशी के साथ सम्पन्न हुआ। आपका गृहस्थाश्रम का नाम जमुना बाई था। सोलह वर्ष की उम्र में पति का देहान्त होने पर विदुषी महासती आनन्दकुँवरजी के उपदेश से सं० १९७६ में दीक्षा ग्रहण की। चौपन वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन कर सं० २०३० आसोज सुदी पूर्णिमा के दिन आपका यशवन्तगढ़ में स्वर्गवास हुआ। महासती सज्जनकुँवरजी की एक शिष्या हुई जिनका नाम बालब्रह्मचारिणी विदुषी महासती कौशल्या जी है। महासती कौशल्या जी की चार शिष्याएँ हैं—महासती विजयवतीजी, महासती हेमवतीजी, महासती दर्शनप्रभा जी और महासती सुदर्शन प्रभा जी।

महासती लहरकुवरजी की दूसरी शिष्या महासती **कंचनकुंवर** जी का जन्म उदयपुर राज्य के कमोल गाँव के दोसी परिवार में हुआ। तेरह वर्ष की वय में आपका विवाह पदराडा में हुआ और चार महीने के पश्चात् ही पति के देहान्त हो जाने से लघुवय में विधवा हो गयीं। महासती श्री लहरकुँवरजी के उपदेश को सुनकर दीक्षा ग्रहण की। आपका नांदेशमा ग्राम में संथारे के साथ स्वर्गवास हुआ। आपकी एक शिष्या है जिनका नाम महासती **वल्लभ कुँवरजी हैं**—जो बहुत ही सेवापरायण है।

पूर्व पंक्तियों में हम बता चुके हैं कि महासती सद्दाजी की रत्नाजी, रंभाजी, नवलाजी की पाँच शिष्याएँ हुई, उनमें से चार शिष्याओं के परिवार का परिचय दिया जा चुका है। उनकी पाँचवीं शिष्या अमृता जी हुई। उनकी परम्परा में महासती श्री रायकुंवर जी हुई जो महान प्रतिभासम्पन्न थीं। आपकी जन्मस्थली उदयपुर के सन्निकट कविता ग्राम में थी। आप ओसवाल तलेसरा वंश की थीं। उनके अन्य जीवनवृत्त के सम्बन्ध में मुझे विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकी है। पर यह सत्य है कि वे एक प्रतिभासम्पन्न साध्वी थीं। जिनके पवित्र उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक शिष्याएँ बनीं। उनमें से दस शिष्याओं के नाम उपलब्ध होते हैं। अन्य शिष्याओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

(१) **महासती सूरजकुंवरजी**—इनकी जन्मस्थली उदयपुर थी और आपका पाणिग्रहण साडोल (मेवाड़) के हनोत परिवार में हुआ था। महासती जी के उपदेश से प्रभावित होकर आपने साधनामार्ग स्वीकार किया। आपकी कितनी शिष्याएँ हुई यह ज्ञात नहीं।

(२) **महासती फूलकुंवरजी**—आपकी जन्मस्थली भी उदयपुर थी। आँचालिया परिवार में आपका पाणिग्रहण हुआ। महासतीजी के पावन प्रवचनों से प्रभावित होकर श्रमणीधर्म स्वीकार किया। आपकी भी कितनी शिष्याएँ हुई यह ज्ञात नहीं।

(३) **महासती हुल्लासकुँवरजी**—आपकी जन्मस्थली भी उदयपुर थी। आपका पाणिग्रहण भी उदयपुर के हरखावत परिवार में हुआ था। आपने भी महासतीजी के उपदेश से प्रभावित होकर संयम धर्म ग्रहण किया था। महासती हुल्लासकुंवरजी बहुत विलक्षण प्रतिभा की धनी थी। आपके उपदेश से प्रभावित होकर पाँच शिष्याएँ बनीं—महासती देवकुँवरजी (जन्म कर्णपुर के पोरवाड परिवार में तथा विवाह उदयपुर पोरवाड परिवार) महासती प्यारकुँवरजी (जन्म—बाठेडा, ससुराल—डबोक) महासती पदमकुँवरजी इनका जन्म उदयपुर के सन्निकट थामला के सियार परिवार में हुआ और डबोक झगड़ावत परिवार में पाणिग्रहण किया। स्थविरा विदुषी महासती सौभाग्य कुंवरजी और सेवामूर्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासती चतुरकुँवरजी। इनमें महासती परमकुंवरजी की महासती **कैलास कुंवरजी** शिष्या हुई। आपकी जन्मस्थली उदयपुर थी। आपके पिता का नाम हीरालालजी और माता का नाम इंदिरा बाई था। आपका गणेशी लालजी से पाणि-ग्रहण हुआ था। सं० १९९३ फाल्गुन शुक्ला दसमी के दिन देलवाड़ा में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी चरित्र बाँचने की शैली बहुत ही सुन्दर थी, आपकी सेवाभावना प्रशंसनीय थी। सं० २०३२ में आपका अजमेर में संथारा सहित स्वर्गवास हुआ। आपकी एक शिष्या हुई जिनका नाम महासती रतनकुँवरजी है।

महासती हुल्लासकुँवरजी की चतुर्थ शिष्या **सौभाग्य कुंवरजी हैं*।** आपकी जन्मस्थली उदयपुर, पिता का नाम मोडीलालजी खोखावत और माता का नाम रूपाबाई था। आपश्री वर्तमान में विद्यमान हैं। आपका स्वभाव बहुत ही मधुर है। आपकी शिष्या हुईं महासती **मोहनकुंवरजी** जिनका जन्म दरीबा (मेवाड़) में हुआ और उनका पाणिग्रहण दबोक ग्राम में हुआ। वि० सं० २००६ में आपने दीक्षा ग्रहण की और सं० २०३१ में आपका स्वर्गवास उदयपुर में हुआ।

महासती हुल्लासकुँवरजी की पाँचवीं शिष्या महासती **चतुरकुंवरजी** हैं जो बहुत ही सेवापरायणा साध्वी रत्न हैं।

(४) महासती रायकुँवरजी की चतुर्थ शिष्या **हुकमकुंवरजी** थी। उनकी सात शिष्याएँ हुईं—महासती **भूरकुंवरजी**—आपका जन्म उदयपुर राज्य के कविता ग्राम में हुआ। आपको थोकड़े साहित्य का बहुत ही अच्छा परिज्ञान था। पचहत्तर वर्ष की उम्र में आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी एक शिष्या हुई जिनका नाम महासती प्रतापकुँवरजी जो प्रकृति से भद्र थीं। लखावली के भण्डारी के परिवार में आपका पाणिग्रहण हुआ था और लगभग सत्तर था, वर्ष की उम्र में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती हुकुमजी की दूसरी शिष्या **रूपकुँवरजी** थीं। आपकी जन्मस्थली देवास (मेवाड़) की थी। लोढा परिवार में आपका पाणिग्रहण हुआ। आपने महासतीजी के पास दीक्षा ग्रहण की। वर्षों तक संयम पालन कर अन्त में आपका उदयपुर में स्वर्गवास हुआ।

महासती हुकुमकुँवरजी की तृतीय शिष्या **बल्लभकुंवरजी** थीं। आपका जन्म उदयपुर के बाफना परिवार में हुआ था और आपका पाणिग्रहण उदयपुर के गेलडा परिवार में हुआ। आपने दीक्षा ग्रहण कर आगम शास्त्र का अच्छा अभ्यास किया। आपकी एक शिष्या हुईं जिनका नाम महासती **गुलाबकुँवरजी** था। आपका जन्म 'गुलुंडिया' परिवार में हुआ था और पाणिग्रहण 'वया' परिवार में हुआ था। आपको आगम व स्तोक साहित्य का सम्यक् परिज्ञान था। उदयपुर में ही संथारा सहित स्वर्गस्थ हुईं।

महासती हुकुमकुँवरजी की चौथी शिष्या **सज्जनकुँवरजी** थीं। आपने उदयपुर के बाफना परिवार में जन्म लिया और दुगड़ों के वहाँ पर ससुराल था। आपकी एक शिष्या हुई जिनका नाम **मोहनकुँवरजी** था जिनकी जन्मस्थली अलवर थी और ससुराल खण्डवा में था। वर्षों तक संयम साधना कर उदयपुर में आपका स्वर्गवास हुआ।

महासती हुकुमकुँवरजी की पाँचवीं शिष्या छोटे **राजकुँवरजी** थीं। आप उदयपुर के माहेश्वरी वंश की थीं।

महासती हुकुमकुँवरजी की एक शिष्या **देवकुँवरजी** थीं जो उदयपुर के सन्निकट कर्णपुर ग्राम की निवासिनी थीं और पोरवाड वंश की थीं और सातवीं शिष्या महासती **गेंदकुँवरजी** थीं। आपका जन्म उदयपुर के सन्निकट भुआना के पगारिया कुल में हुआ। चन्देसरा गाँव के बोकड़िया परिवार में आपकी ससुराल थी। आपको सैकड़ों थोकड़े कण्ठस्थ थे। आप सेवापरायण थीं। सं० २०१० में ब्यावर में आपका स्वर्गवास हुआ।

(५) **महासती मदनकुंवरजी**—आपकी जन्मस्थली उदयपुर थी। आपकी प्रतिभा गजब की थी। आपने महासतीजी के पास दीक्षा ग्रहण की। आपको आगम साहित्य का गम्भीर अध्ययन था और थोकड़ा साहित्य पर भी आपका पूर्ण अधिकार था। एक बार आचार्यश्री मुन्नालालजी महाराज जो आगम साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे, उन्होंने उदयपुर के जाहिर प्रवचन सभा में महासती मदनकुँवरजी को उन्नीस प्रश्न किये थे। वे प्रश्न आगम ज्ञान के साथ ही प्रतिभा से सम्बन्धित थे। उन्होंने पूछा—बताइये महासतीजी; सिद्ध भगवान कितना विहार करते हैं? उत्तर में महासती जी ने कहा—सिद्ध भगवान सात राजु का विहार करते हैं, क्योंकि सिद्ध जो बनते हैं वे यहाँ पर बनते हैं, यहीं पर अष्ट कर्म नष्ट करते हैं और फिर कर्म नष्ट होने से वे ऊर्ध्वलोक के अग्रभाग पर अवस्थित होते हैं। क्योंकि वहाँ से आगे आकाश द्रव्य है, पर धर्मास्तिकाय नहीं।

* देखिए—वर्तमान युग की साध्वियाँ—लेo राजेन्द्रमुनि साहित्यरत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाराजश्री ने दूसरा प्रश्न किया—साधु कितना विहार करते हैं ? उत्तर में महासतीजी ने कहा—आचार्य प्रवर, साधु चौदह राजु का विहार करते हैं। केवली भगवान जिनका आयुकर्म कम होता है और वेदनीय नाम, गोत्र कर्म अधिक होता है, तब केवली समुद्‌घात होती है। उस समय उनके आत्मप्रदेश सम्पूर्ण लोक में प्रसरित हो जाते हैं। केवली महाराज साधु हैं। उनके आत्मप्रदेश भी साधु के हैं। इस दृष्टि से वे चौदह राजु का विहार करते हैं।

आचार्यश्री ने तीसरा प्रश्न किया—सिद्ध भगवान कितने लम्बे हैं और कितने चौड़े हैं ? महासतीजी ने उत्तर में निवेदन किया—सिद्ध भगवान तीन सौ तैंतीस धनुष और बत्तीस अंगुल लम्बे हैं। क्योंकि पाँच सौ धनुष की अवगाहना वाले जो सिद्ध बनते हैं उनके आत्मप्रदेश तीन सौ तैंतीस धनुष और बत्तीस अंगुल लम्बे रहते हैं और सिद्ध भगवान चौड़े हैं पैंतालीस लाख योजन। पैंतालीस लाख योजन का मनुष्य-क्षेत्र है। जहाँ पर एक सिद्ध हैं वहाँ पर अनन्त सिद्ध हैं। सभी सिद्धों के आत्म-प्रदेश परस्पर मिले हुए हैं। बीच में तनिक मात्र भी व्यवधान नहीं है। इस घनत्व की दृष्टि से सिद्ध पैंतालीस लाख योजन चौड़े हैं।

चौथा प्रश्न आचार्यश्री ने किया—चौबीस तीर्थंकरों में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हैं और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर हैं। बताइये दोनों में से किसकी आत्मा हमारे से अधिक सन्निकट है ? उत्तर में महासतीजी ने कहा—भगवान ऋषभदेव की आत्मा हमारे से अधिक सन्निकट है बनिस्बत महावीर के। क्योंकि भगवान ऋषभदेव की अवगाहना पाँच सौ धनुष की थी और महावीर की अवगाहना सात हाथ की थी। जिससे ऋषभदेव के आत्म-प्रदेश तीन सौ तैंतीस धनुष और बत्तीस अंगुल है और महावीर की आत्मा के प्रदेश चार हाथ और सोलह अंगुल है। अतः ऋषभदेव की आत्मा महावीर की आत्मा से हमारे अधिक सन्निकट है।

पाँचवाँ प्रश्न आचार्यश्री ने किया—दो श्रावक हैं। वे दोनों एक ही स्थान पर बैठे हैं। एक देवसी, प्रतिक्रमण करता है और दूसरा राईसी प्रतिक्रमण करता है। ये दोनों पृथक्-पृथक् प्रतिक्रमण क्यों करते हैं ? उसकी क्या अपेक्षा है स्पष्ट कीजिए। महासतीजी ने उत्तर में कहा—दो श्रावक हैं, एक भरतक्षेत्र का और दूसरा महाविदेह क्षेत्र का। वे दोनों श्रावक विराधक हो गये और वे वहाँ से आयु पूर्ण कर अढाई द्वीप के बाहर नन्दीश्वर द्वीप में जलचर के रूप में उत्पन्न हुए। नन्दीश्वर द्वीप में देव भगवान तीर्थंकरों के अष्टाह्निक महोत्सव मनाते हैं। उन महोत्सवों में तीर्थंकर भगवान के उत्कीर्तन को सुनकर उन जलचर जीवों को जातिस्मरणज्ञान होता है और वे उस ज्ञान से अपने पूर्वभव को निहारते हैं और उस जातिस्मरणज्ञान के आधार से वे वहां पर प्रतिक्रमण करते हैं। क्योंकि नन्दीश्वर द्वीप में तो रात-दिन का कोई क्रम नहीं है। अतः वे जातिस्मरणज्ञान से अपने पूर्व स्थल को देखते हैं, मन में ग्लानि होती है, अतः वे वहाँ प्रतिक्रमण करते हैं। पर जिस समय भरतक्षेत्र में दिन होता है उस समय महाविदेहक्षेत्र में रात्रि होती है, अतः एक देवसी प्रतिक्रमण करता है और दूसरा राईसी प्रतिक्रमण करता है। सन्निकट बैठे रहने पर भी वे दोनों पृथक्-पृथक् प्रतिक्रमण करते हैं।

आचार्यश्री ने छठा प्रश्न किया—पाँच सौ तिरसठ जीव के भेदों में से ऐसा कौन-सा जीव है जो एकान्त मिथ्यादृष्टि है और साथ ही एकान्त शुक्ललेश्यी भी। क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं। महासतीजी ने कहा—तेरह सागर की स्थिति वाले किल्विषी देव में एकान्त मिथ्यादृष्टि होती है और साथ ही वे एकान्त शुक्ललेश्यी भी हैं।

इस प्रकार उन्नीस प्रश्नों के उत्तरों को सुनकर आचार्य प्रवर और सभा प्रमुदित हो गयी और उन्होंने कहा—मैंने कई सन्त-सतियाँ देखीं, पर इनके जैसी प्रतिभासम्पन्न साध्वी नहीं देखी। महासती मदनकुँवरजी जिस प्रकार प्रकृष्ट प्रतिभा की धनी थी उसी प्रकार उत्कृष्ट आचारनिष्ठा भी थीं। गुप्त तप उन्हें पसन्द था। प्रदर्शन से वे कोसों दूर भागती थीं। वे साध्वियों के आहारादि से निवृत्त होने पर जो अवशेष आहार बच जाता और पात्र धोने के बाद जो पानी बाहर डालने का होता उसी को पीकर सन्तोष कर लेतीं। कई बार नन्हीं सी गुड की डेली या शक्कर लेकर मुँह में डाल लेती। यदि कोई उनसे पूछता कि क्या आज आपके उपवास है, वे कहती नहीं, मैंने तो मीठा खाया है।

उनमें सेवा का गुण भी गजब का था। उन्हें हजारों जैन कथाएँ और लोक कथाएँ स्मरण थीं। समय-समय पर बालक और बालिकाओं को कथा के माध्यम से संसार की असारता का प्रतिपादन करती। कर्म के मर्म को समझातीं। उनका मानना था कि बालकों को और सामान्य प्राणियों को कथा के माध्यम से ही उपदेश देना चाहिए जिससे वह उपदेश ग्रहण कर सके। उन्होंने मुझे बाल्यकाल में सैंकड़ों कथाएँ सुनाई थीं। सन् १९४९ में तीन दिन के संथारे के साथ उदयपुर में उनका स्वर्गवास हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) **महासती सल्लेकुँवरजी**—आपकी जन्मस्थली उदयपुर थी और आपका उदयपुर में ही मेहता परिवार में पाणिग्रहण हुआ। आपने महासतीजी के उपदेश को सुनकर वैराग्य-भावना जागृत हुई और अपनी पुत्री सज्जनकुँवर के साथ आपने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आप सेवापरायणा साध्वी थीं।

(७) **महासती सज्जनकुंवरजी**—आपकी माता का नाम सल्लेकुंवर था और आपने माँ के साथ ही महासती जी की सेवा में दीक्षा ग्रहण की थी।

(८) **महासती तीजकुँवरजी**—आपकी जन्मस्थली उदयपुर के सन्निकट तिरपाल गाँव में थी। आपका पाणि-ग्रहण उसी गाँव में सेठ रोडमलजी भोगर के साथ सम्पन्न हुआ। गृहस्थाश्रम में आपका नाम गुलाबदेवी था। आपके दो पुत्र थे जिनका नाम प्यारेलाल और भैरूलाल था तथा एक पुत्री थी जिनका नाम खमाकुंवर था। आपने महासतीजी के उपदेश से प्रभावित होकर दो पुत्र और एक पुत्री के साथ दीक्षा ग्रहण की। आपके पति का स्वर्गवास बहुत पहले हो चुका था। आपश्री ने श्रमणीधर्म स्वीकार करने के पश्चात् नौ बार मासखमण की तपस्याएँ कीं, सोलह वर्षों तक आपने एक घी के अतिरिक्त दूध, दही, तेल और मिष्टान इन चार विगयों का त्याग किया। एक बार आपको प्रातःकाल सपना आया—आपने देखा कि एक घड़े के समान बृहत्काय मोती चमक रहा है। अतः जागृत होते ही आपने स्वप्न-फल पर चिन्तन करते हुए विचार किया है अब मेरा एक दिन का ही आयु शेष है। अतः संथारा कर अपने जीवन को पवित्र बनाऊँ। आपने संथारा किया और एक दिन का संथारा कर स्वर्गस्थ हुई।

(९) **परम विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी**—आपश्री की जन्मस्थली उदयपुर के सन्निकट तिरपाल गाँव में थी और जन्म सं० १९४९ (सन् १८९२) में हुआ। आपके पिताश्री का नाम रोडमलजी और माता का नाम गुलाबदेवी था और आपका सांसारिक नाम खमाकुंवर था। नौ बरस की लघुवय में ही आपका वाग्दान डुलावतों के गुडे के तकतमलजी के साथ हो गया। किन्तु परम विदुषी महासती रायकुँवरजी और कविवर्य पं० मुनि नेमीचन्दजी महाराज के त्याग-वैराग्ययुक्त उपदेश को श्रवण कर आपमें वैराग्य भावना जाग्रत हुई और जिनके साथ वाग्दान किया गया था उनका सम्बन्ध छोड़कर अपनी मातेश्वरी और अपने ज्येष्ठ भ्राता प्यारेलाल और भैरूलाल के साथ क्रमशः महासती राजकुंवरजी और कविवर्य नेमीचन्दजी महाराज के पास जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। आपकी दीक्षा स्थली पचभद्रा (बाडमेर) में थी और दोनों ने शिवगंज (जोधपुर) में दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपके भ्राताओं की उम्र १३ और १४ वर्ष की थी और आपकी उम्र ९ वर्ष की। दोनों भ्राता बड़े ही मेधावी थे। कुछ ही वर्षों में उन्होंने आगम साहित्य का गहरा अध्ययन किया। किन्तु दोनों ही युवावस्था में क्रमशः मदार (मेवाड़) और जयपुर में संथारा कर स्वर्गस्थ हुए।

खमाकुँवर का दीक्षा नाम महासती सोहनकुँवरजी रखा गया। आप बालब्रह्मचारिणी थी। आपने दीक्षा ग्रहण करते ही आगम साहित्य का गहरा अध्ययन प्रारम्भ किया और साथ ही थोकड़े साहित्य का भी। आपने शताधिक रास, चौपाइयाँ तथा भजन भी कण्ठस्थ किये। आपकी प्रवचन शैली अत्यन्त मधुर थी। जिस समय आप प्रवचन करती थीं विविध आगम के रहस्यों के साथ रूपक, दोहे, कवित्त, श्लोक और उर्दू शायरी का भी यत्र-तत्र उपयोग करती थी। विषय के अनुसार आपकी भाषा में कभी ओज और कभी शान्तरस प्रवाहित होता था और जनता आपके प्रवचनों को सुनकर मन्त्रमुग्ध हो जाती थी।

अध्ययन के साथ ही तप के प्रति आपकी स्वाभाविक रुचि थी। माता के संस्कारों के साथ तप की परम्परा आपको वारिस में मिली थी। आपने अपने जीवन की पवित्रता हेतु अनेक नियम ग्रहण किये थे, उनमें से कुछ नियमों की सूची इस प्रकार है—

(१) पंच पर्व दिनों में आयंबिल, उपवास, एकासन, नीवि आदि में से कोई न कोई तप अवश्य करना।

(२) बारह महीने में छह महीने तक चार विगय ग्रहण नहीं करना। केवल एक विगय का ही उपयोग करना।

(३) छः महीने तक अचित्त हरी सब्जी आदि का भी उपयोग नहीं करना।

(४) चाय का परित्याग।

(५) उन्होंने महासती कुसुमवतीजी, महासती पुष्पवतीजी और महासती प्रभावतीजी* ये तीन शिष्याएँ

* इन तीनों का परिचय हमने 'वर्तमान युग की साध्वियाँ' के परिचय में दिया है। —ले० राजेन्द्रमुनि साहित्यरत्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनायीं, उसके पश्चात् उन्होंने अपनी नेश्राय में शिष्याएँ बनाना त्याग दिया। यद्यपि उन्होंने पहले भी तीस-पैंतीस साध्वियों को दीक्षा प्रदान की किन्तु उन्हें अपनी शिष्याएँ नहीं बनायीं।

(६) प्लास्टिक, सेलूलाइड आदि के पात्र, पट्टी आदि कोई वस्तु अपनी नेश्राय में न रखने का निर्णय लिया।

(७) जो उनके पास पात्र थे उनके अतिरिक्त नये पात्र ग्रहण करने का भी उन्होंने त्याग कर दिया।

(८) एक दिन में पाँच द्रव्य से अधिक द्रव्य ग्रहण न करना।

(९) प्रतिदिन कम से कम पच्चीसों गाथाओं की स्वाध्याय करना।

(१०) बारह महीने में एक बार पूर्ण बत्तीस आगमों की स्वाध्याय करना।

इस प्रकार उन्होंने अपने जीवन को अनेक नियम और उपनियमों से आबद्ध बनाया। उनके जीवन में वैराग्य भावना अठखेलियाँ करती थीं। यही कारण है कि अजमेर में सन् १९६३ में श्रमणी संघ ने मिलकर आपको चन्दनबाला श्रमणी संघ की अध्यक्षा नियुक्त किया और श्रमणसंघ के उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज समय-समय पर अन्य साध्वियों को प्रेरणा देते हुए कहते कि देखो, विदुषी महासती सोहनकुँवरजी कितनी पवित्र आत्मा है। उनका जीवन त्याग वैराग्य का साक्षात् प्रतीक है। तुम्हें इनका अनुसरण करना चाहिए।

विदुषी महासती सोहनकुंवरजी जहाँ ज्ञान और ध्यान में लल्लीन थीं वहाँ उन्होंने उत्कृष्ट तप की भी अनेक बार साधनाएँ कीं। उनके तप की सूची इस प्रकार हैं—

३३	३२	३१	२४	२३	२२	२१	२०	१७	१६	१५	१०	९	८	६	५	४	३	२
२	१	१	२	१	२	१	२	३	३	१३	१०	१०	५०	४०	४०	६५	६१	८०

जब भी आप तप करती तब पारणे में तीन पौरसी करती थीं या पारणे के दिन आयंबिल तप करतीं जिससे पारणे में औद्देशिक और नैमित्तिक आदि दोष न लगे।

बाह्य तप के साथ आन्तरिक तप की साधना भी आपकी निरन्तर चलती रहती थी। सेवा भावना आप में कूट-कूट कर भरी हुई थी। आप स्व-सम्प्रदाय की साध्वियों की ही नहीं किन्तु अन्य सम्प्रदाय की साध्वियों की भी उसी भावना से सेवा करती थी। आपके अन्तर्मानस में स्व और पर का भेद नहीं था।

आचार्य गणेशीलालजी महाराज की शिष्याएँ केसरकुंवरजी, जो साइकल से अक्सिडेण्ट होकर सड़क पर गिर पड़ी थीं, सन्ध्या का समय था, आप अपनी साध्वियों के साथ शौच भूमि के लिए गयी। वहाँ पर उन्हें दयनीय स्थिति में गिरी हुई देखा। उस समय आपके दो चद्दर ओढ़ने को थी, उसमें से आपने एक चादर की झोली बनाकर और सतियों की सहायता से स्थानक पर उठाकर लायीं और उनकी अत्यधिक सेवा-सुश्रूषा की। इसी प्रकार महासती नाथकुँवरजी आदि की भी आपने अत्यधिक सेवा सुश्रूषा की और अन्तिम समय में उन्हें संथारा आदि करवाकर सहयोग दिया। आचार्य हस्तीमलजी महाराज की शिष्याएँ महासती अमरकुंवरजी, महासती धनकुंवरजी, महासती गोगाजी आदि अनेक सतियों की सुश्रूषा की और संथारा आदि करवाने में अपूर्व सहयोग दिया।

सन् १९६३ में अजमेर के प्रांगण में श्रमण संघ का शिखर सम्मेलन हुआ। उस अवसर पर वहाँ पर अनेक महासतियाँ एकत्रित हुईं। उन सभी ने चिन्तन किया कि सन्तों के साथ हमें भी एकत्रित होकर कुछ कार्य करना चाहिए। उन सभी ने वहाँ पर मिलकर अपनी स्थिति परचिन्तन किया कि भगवान महावीर के पश्चात् आज दिन तक सन्तों के अधिक सम्मेलन हुए, किन्तु श्रमणियों का कोई भी सम्मेलन आज तक नहीं हुआ और न श्रमणियों की परम्परा का इतिहास भी सुरक्षित है। भगवान महावीर के पश्चात् साध्वी परम्परा का व्यवस्थित इतिहास न मिलना हमारे लिए लज्जास्पद है जबकि श्रमणों की तरह श्रमणियों ने भी आध्यात्मिक साधना में अत्यधिक योगदान दिया है। इसका मूल कारण है एकता व एक समाचारी का अभाव। अतः उन्होंने श्री वर्द्धमान चन्दनबाला श्रमणी संघ का निर्माण किया और श्रमणियों के ज्ञान-दर्शन चारित्र के विकास हेतु इक्कीस नियमों का निर्माण किया। उसमें पच्चीस प्रमुख साध्वियों की एक समिति का निर्माण हुआ। चन्दनबाला श्रमणी संघ की प्रवर्तिनी पद पर सर्वानुमति से आपश्री को नियुक्त किया गया जो आपकी योग्यता का स्पष्ट प्रतीक था।

राजस्थान प्रान्त में रहने के बावजूद भी आपका मस्तिष्क संकुचित विचारों से ऊपर उठा हुआ था। यही कारण है कि सर्वप्रथम राजस्थान में साध्वियों को संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषा के उच्चतम अध्ययन करने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके अन्तर्मानस में भावनाएँ जागृत हुईं। आपने अपनी सुशिष्या महासती कुसुमवतीजी, पुष्पावतीजी, चन्द्रावतीजी आदि को किंग्स कालेज बनारस की, संस्कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की साहित्यरत्न प्रभृति उच्चतम परीक्षाएँ दिलवायीं। उस समय प्राचीन विचारधारा के व्यक्तियों ने आपश्री का डटकर विरोध किया कि साध्वियों को संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी का उच्च अध्ययन न कराया जाय और न ही परीक्षा ही दिलवायी जाएँ। तब आपने स्पष्ट शब्दों में कहा—साधुओं की तरह साध्वियों के भी अध्ययन करने का अधिकार है। आगम साहित्य में साध्वियों के अध्ययन का उल्लेख है। युग के अनुसार यदि साध्वियाँ संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं का अध्ययन नहीं करेंगी तो आगम और उसके साहित्य को पढ़ नहीं सकतीं और बिना पढ़े आगमों के रहस्य समझ में नहीं आ सकते। इसका विरोधियों के पास कोई उत्तर नहीं था। आप विरोध को विनोद मानकर अध्ययन करवाती रहीं। उसके पश्चात् स्थानकवासी परम्परा में अनेक मूर्धन्य साध्वियाँ तैयार हुईं। आज अनेक साध्वियाँ एम. ए., पी. एच-डी. भी हो गयी हैं। यह था आपका शिक्षा के प्रति अनुराग।

आपने अनेक व्यक्तियों को प्रतिबोध दिया। जब अन्य सन्त व सती जन अपनी शिष्या बनाने के लिए उत्सुक रहती हैं तब आपकी यह विशेषता थी कि प्रतिबोध देकर दूसरों के शिष्य व शिष्याएँ बनाती थीं। आपने अपने हाथों से ३०-३५ बालिकाओं और महिलाओं को दीक्षाएँ दीं पर सभी को अन्य नामों से ही घोषित किया। अपनी ज्येष्ठ गुरु बहिन महासती मदनकुँवरजी के अत्यधिक आग्रह पर उनकी आज्ञा के पालन हेतु तीन शिष्याओं को अपनी नेश्राय में रखा। यह थी आप में अपूर्व निस्पृहता। मुझे भी (देवेन्द्र मुनि) आद्य प्रतिबोध देने वाली आप ही थीं।

आपके जीवन में अनेक सद्गुण थे जिसके कारण आप जहाँ भी गयीं, वहाँ जनता जनार्दन के हृदय को जीता। आपने अहमदाबाद, पालनपुर, इन्दौर, जयपुर, अजमेर, जोधपुर, ब्यावर, पाली, उदयपुर, नाथद्वारा, प्रभृति अनेक क्षेत्रों में वर्षावास किये' सेवा भावना से प्रेरित होकर अपनी गुरु बहिनों की तथा अन्य साध्वियों की वृद्धावस्था के कारण दीर्घकाल तक आप उदयपुर में स्थानापन्न रहीं।

सन् १९६६ में आपका वर्षावास पाली में था। कुछ समय से आपको रक्तचाप की शिकायत थी, पर आपश्री का आत्मतेज अत्यधिक था जिसके कारण आप कहीं पर भी स्थिरवास नहीं विराजीं सन् १९६६ (सं० २०२३) में भाद्र शुक्ला १३ को संथारे के साथ रात्रि में आपका स्वर्गवास हुआ। आप महान प्रतिभासम्पन्न साध्वी थीं। आपके स्वर्गवास से एक तेजस्वी महासती की क्षति हुई। आपका तेजस्वी जीवन जन-जन को सदा प्रेरणा देता रहेगा।

विदुषी महासती श्री सोहनकुँवरजी महासती की प्रथम शिष्या विदुषी महासती कुसुमवतीजी हैं। उनकी चार शिष्याएँ हैं—बाल ब्रह्मचारिणी महासती चारित्रप्रभाजी, बाल ब्रह्मचारिणी महासती दिव्यप्रभा, बाल ब्रह्मचारिणी दर्शन प्रभाजी और विदुषी महासती पुष्पवतीजी द्वितीय शिष्या हैं। उनकी तीन शिष्याएँ हैं—बाल ब्रह्मचारिणी चन्द्रावतीजी, बाल ब्रह्मचारिणी प्रियदर्शनाजी और बालब्रह्मचारिणी किरणप्रभाजी।

तृतीय सुशिष्या महासती प्रभावतीजी महाराज की चार शिष्याएँ हैं—महासती श्रीमतीजी, महासती प्रेम कुंवरजी, महासती चन्द्रकुंवरजी तथा महासती बालब्रह्मचारिणी हर्षप्रभाजी।

इस प्रकार प्रस्तुत परम्परा वर्तमान में चल रही है। इस परम्परा में अनेक परम विदुषी साध्वियाँ हैं।

परम विदुषी महासती सद्दाजी की एक शिष्या फत्तूजी हुई जिनके सम्बन्ध में हम पूर्व सूचित कर चुके हैं। महासती फत्तूजी का विहार क्षेत्र मुख्य रूप से मारवाड़ रहा। उनकी अनेक शिष्याएँ हुईं और उन शिष्याओं की परम्पराओं में भी अनेक शिष्याएँ समय-समय पर हुईं। मारवाड़ के उस प्रान्त में जहाँ स्त्रीशिक्षा का पूर्ण अभाव था, वहाँ पर उन साध्वियों ने त्याग, तप के साथ शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति की। क्योंकि कई साध्वियों के हाथों की लिखी हुई प्रतियाँ प्राप्त होती हैं जो उनकी शिक्षा-योग्यता का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है। पर परिताप है कि उनके सम्बन्ध में प्रयास करने पर भी मुझे व्यवस्थित सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी। इसलिए अनुक्रम में उनके सम्बन्ध में लिखना बहुत ही कठिन है। जितनी भी सामग्री प्राप्त हो सकी है उसी के आधार से मैं यहाँ लिख रहा हूँ। यदि राजस्थान के अमर जैन ज्ञान भण्डार में व्यवस्थित सामग्री मिल गयी तो बाद में इस सम्बन्ध में परिष्कार भी किया जा सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फत्तूजी की शिष्या-परम्परा में महासती आनन्दकुँवरजी एक तेजस्वी साध्वी थीं। उनकी बाईस शिष्याएँ थीं जिनमें से कुछ साध्वियों के नाम प्राप्त हो सके हैं। महासती आनन्दकुँवरजी ने कब दीक्षा ली यह निश्चित संवत् नहीं मिल सका। उनका स्वर्गवास सं० १६८१ पौष शुक्ला १२ को जोधपुर में संथारे के साथ हुआ। महासती आनन्दकुंवरजी के पास ही पं० नारायणचन्दजी महाराज की मातेश्वरी राजाजी ने और नारायणदासजी महाराज के शिष्य मुलतानमलजी महाराज की मातेश्वरी नेनूजी ने दीक्षा ग्रहण की थी। महासती राजाजी का स्वर्गवास सं० १६७८ वैशाख सुदी पूनम को जोधपुर में हुआ था।

महासती राजाजी की एक शिष्या रूपजी हुई थीं जिन्हें थोकड़े साहित्य का अच्छा अभ्यास था। महासती आनन्दकुंवरजी की एक शिष्या महासती परतापाजी हुईं जिनका वि० सं० १६८३ मृगशिर वदी ११ को स्वर्गवास हुआ था। महासती फूलकुंवरजी भी महासती आनन्दकुंवरजी की शिष्या थीं और उनकी सुशिष्या महासती झमकूजी थीं जिन्होंने अपनी पुत्री महासती कस्तूरीजी के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। दोनों का जोधपुर में स्वर्गवास हुआ। महासती कस्तूराजी की एक शिष्या गवराजी थीं वे बहुत ही तपस्विनी थीं। उन्होंने अपने जीवन में पन्द्रह मासखमण किये थे, और भी अनेक छोटी-मोटी तपस्याएँ की थीं। उनका स्वर्गवास भी जोधपुर में हुआ।

महासती आनन्दकुंवरजी की बभूताजी, पन्नाजी, धापूजी, और किसनाजी अनेक शिष्याएँ थीं। महासती किसनाजी की हरकूजी शिष्या हुईं। उनकी समदाजी शिष्या हुईं और उनकी शिष्या पानाजी हैं। आपका जन्म जालौर में हुआ, पाणिग्रहण भी जालोर में हुआ। गढ़सिवाना में दीक्षा ग्रहण की और वर्तमान में कारणवशात् जालोर में विराजिता हैं।

इस प्रकार महासती आनन्दकुंवरजी की परम्परा में वर्तमान में केवल एक साध्वीजी विद्यमान हैं।

महासती फत्तूजी की शिष्या-परिवारों में महासती पन्नाजी हुईं। उनकी शिष्या जसाजी हुईं। उनकी शिष्या सोनाजी हुईं। उनकी भी शिष्याएँ हुईं, किन्तु उनके नाम स्मरण में नहीं हैं।

महासती जसाजी की नैनूजी एक प्रतिभासम्पन्न शिष्या थी। उनकी अनेक शिष्याएँ हुईं। महासती वीराजी, हीराजी, कंकूजी, आदि अनेक तेजस्वी साध्वियाँ हुईं। महासती कंकूजी की महासती हरकूजी, रामूजी, आदि शिष्याएँ हुईं। महासती हरकूजी की महासती उमरावकुंवरजी, बक्सूजी (प्रेमकुंवरजी) विमलवतीजी आदि अनेक शिष्याएँ हुईं। महासती उमरावकुंवरजी की शकुनकुंवरजी उनकी शिष्या सत्यप्रभा और उनकी शिष्या चन्द्रप्रभा आदि हैं। और महासती विमलवतजी की दो शिष्याएँ महासती मदनकुंवरजी और महासती ज्ञानप्रभाजी।

महासती फत्तूजी के शिष्या-परिवार में महासती चम्पाजी भी एक तेजस्वी साध्वी थीं। उनकी ऊदाजी, बायाजी आदि अनेक शिष्याएँ हुईं। वर्तमान में उनकी शिष्या-परम्परा में कोई नहीं हैं।

महासती फत्तूजी की शिष्या-परम्परा में महासती दीपाजी, वल्लभकुंवरजी आदि अनेक विदुषी व सेवा-भाविनी साध्वियाँ हुईं। उनकी परम्परा में सरलमूर्ति महासती सीताजी और श्री महासती गवराजी (उमरावकुंवरजी) आदि विद्यमान हैं।

इस प्रकार आचार्यश्री अमरसिंहजी महाराज के समय से महासती भागाजी की जो साध्वी परम्परा चली उस परम्परा में आज तक ग्यारह सौ से भी अधिक साध्वियाँ हुई हैं। किन्तु इतिहास लेखन के प्रति उपेक्षा होने से उनके सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। इन सैकड़ों साध्वियों में बहुत-सी साध्वियाँ उत्कृष्ट तपस्विनियाँ रहीं। अनेकों साध्वियों का जीवनवत सेवा रहा। अनेकों साध्वियाँ बड़ी ही प्रभावशालिनीं थीं। मैं चाहता था कि इन सभी के सम्बन्ध में व्यवस्थित एवं प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत ग्रन्थ में दूँ। पर राजस्थान के भण्डार जहाँ इनके सम्बन्ध में प्रशस्तियों के आधार से या उनके सम्बन्ध में रचित कविताओं के आधार से सामग्री प्राप्त हो सकती थी, पर स्वर्ण भूमि के. जी. एफ. जैसे सुदूर दक्षिण प्रान्त में बैठकर सामग्री के अभाव में विशेष लिखना सम्भव नहीं था। तथापि प्रस्तुत प्रयास इतिहासप्रेमियों के लिए पथ-प्रदर्शक बनेगा इसी आशा के साथ मैं अपना लेख पूर्ण कर रहा हूँ। यदि भविष्य में विशेष प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हुई तो इस पर विस्तार से लिखने का भाव है।

—□—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org